सेवा

भाग-२

'दया' करना दैवीय गुणों में से उत्तम गुण है तथा **धर्म का मूल है ।** **'दयाविहीन'** जीव के हृदय में किसी के लिए हमदर्दी, तरस या सहायता करने की भावना ही नहीं उत्पन्न होती । इसलिए 'दया' के बिना हम किसी की सेवा नहीं कर सकते । गुरबाणी में **'दया'** का महत्व यूँ दर्शाया गया है —

धौलु धरमु दइआ का पूतु ॥ (पृ ३)

सचु ता परु जाणीऐ जा सिरव सची लेइ ॥
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ ॥ (पृ ४६८)

दइआ देवता रिमा जपमाली ते माणस परधान ॥ (पृ १२४५)

सतु संतोखु दइआ धरमु नामु दानु इसनानु द्रिड़ाइआ ।
गुरसिरव लै गुरसिरवु सदाइआ । (वा.भा.गु ११/३)

'जीव दया' अनुसार सेवा करने में —

यतीमों
विधवाओं
अपाहिजो
अन्धों
रोगियों
वृद्धों
जरूरतमंदों

आदि इन्सानों तथा पशु-पक्षियों की **देख-भाल** तथा **सेवा संभाल** गिनी जाती है। ऐसी **मानवता की सेवा** में शारीरिक सेवा के अतिरिक्त 'स्वयं' को भी न्यौछावर करना पड़ता है — इसलिए यदि यह सेवा गुरू की प्रेम-भावना से की जाये, तो **अत्यन्त लाभवंत तथा कल्याणकारी होती है ।**

गुरू साहिब के आगमन से पहले, संसार में अनेक प्रकार के कर्म-काण्ड प्रचलित थे, जिनमें धार्मिक मार्गदर्शक भी गलतान थे। गुरू साहिब ने हम पर तरस करके, हमें इन फोकट तथा थोथे कर्म-काण्डों में से निकालने के लिए **ईश्वरीय गुरबाणी** बख्शिश की तथा सही 'मार्ग-दर्शन' द्वारा —

प्रिम-रस

प्रिम-प्याला

जीवन-रौं

अमृत

शब्द

नाम

से जुड़ने का उपदेश दिया, परन्तु हम पुनः उन्हीं भ्रांतियों, वहमों, **फोकट-साधनों तथा कर्म-काण्डों में फँस गये हैं**। यद्यपि हमारे कर्म-काण्ड पहले से बदल गये हैं। इन समस्त कर्म-काण्डों के पीछे **निज-स्वार्थ की भावना** होती है। ये स्वार्थी अहम्वादी कर्म-काण्ड **आत्मिक जीवन रौं तथा परम-पवित्र प्रेम भावना के बिना, फोकट मुर्दा साधन ही बन कर रह गये हैं।**

जिनी नामु विसारिआ बहु करम कमावहि होरि ॥
नानक जम पुरि बधे मारीअहि जिउ संन्ही उपरि चोर ॥ (पृ. १२४७)

अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास ॥
प्रेम भगति नही ऊपजै ता ते रविदास उदास ॥ (पृ.३४६)

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु ॥
सबदै सादु न आवई नामि न लगे पिआरु ॥
सेवा थाइ न पवई तिस की खपि खपि होइ खुआरु ॥ (पृ. १२४७)

इन **कर्म-काण्डी सेवाओं के कारण** धर्म की आड़ में —

ईर्ष्या

द्वैत

घृणा

अशान्ति

दुख

क्लेश

खींचतान

पक्षपात

लड़ाईयाँ

झगड़े

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

आदि, **अवगुण बढ़ते ही जाते हैं ।**

इन फोकट धार्मिक साधनों से हम **'भले-भद्र'** बन बैठते हैं **तथा दूसरों को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं।** ऐसे 'भले-भद्र' पढ़े-पढ़ाये, सुने-सुनाये, अधूरे, फोकट, थोथे ज्ञान से अपनी **बुद्धि के सींग तीखे करके,** दूसरों से वाद-विवाद द्वारा शुष्क, ज्ञान **'मथने'** के लिए तत्पर रहते हैं । हम **इसको ही धार्मिक सेवा समझे हुए हैं** तथा अपने अहम् को चारा डाल कर और बढ़ा रहे हैं ।

दूसरे शब्दों में ऐसी धर्म प्रचार की सेवा करना, हमारा **दिमागी 'शुगल' ही बन चुका है ।**

कथनी बदनी करता फिरै हुकमै मूलि न बुझई अंधा कचु निकचु।।

(पृ ५०९)

गिआनु गिआनु कथै सभु कोई ।।
कथि कथि बादु करे दुखु होई ।। (पृ ८३१)

बिनु प्रीती करहि बहु बाता कूडु बोलि कूडो फलु पावै ।। (पृ ८८१)

इस प्रकार हमारी सुरति **'मैं-मेरी' की भावना से ऊपर नहीं उठती** तथा हम इस भ्रम-भुलाव के चक्र में जीवन की वास्तविक **'आत्मिक राह' से अनजान तथा लापरवाह हो रहे हैं ।**

हम **थोड़ी सी सेवा** करके ही अपने मनोरथों की पूर्ति चाहते हैं —

सेवा थोरी मागनु बहुता ।।
महलु न पावै कहतो पहुता ।। (पृ ७३८)

यदि हमारा मनोरथ पूरा न हो, तब हम ईश्वर से मुँह मोड़ लेते हैं तथा **नास्तिक बन कर, परमार्थ के विरूद्ध** प्रचार करने लगते हैं ।

यदि कोई परमार्थिक कल्याण के लिए धार्मिक सेवा करता है, तो वह भी **बेपरवाही, लापरवाही, अधूरे तथा ऊपरी मन से की जाती है । क्योंकि हमें वास्तविक आत्मिक 'जीवन राह' की समझ या ज्ञान ही नहीं होता** तथा हमारा थोड़ा-बहुत आत्मिक ज्ञान भी अधूरा, अपूर्ण तथा गलत होता है।

इस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में धार्मिक सेवा की अपेक्षा 'मायिकी सेवा' को ही **प्राथमिकता (priority) दी जाती है।**

हम जन्म-जन्मांतरों से मायिकी मंडल में विचरण करते आये हैं, तथा **मैं-मेरी** का ख्याल, भावना, निश्चय हमारे अन्दर इतना दृढ़ हो चुका है कि बावजूद इतने धर्मों तथा धार्मिक प्रचार के हम इस **अहम् के भ्रम-भुलाव की कैद** (egoistic cell) **में से निकल नहीं सके ।**

हमारे सभी ख्याल, विचार, कर्म, सेवा, पूजा, भक्ति आदि **हमारे अपने ही अहम् के चारों और घूमते हैं।** इसे ही धर्म समझ कर हम सन्तुष्ट हुए बैठे हैं ।

इस लिए हमारी अनेक प्रकार की सेवाएँ तथा साधनाएँ भी अहम् के भ्रम-भुलाव में **द्वैत भाव, त्रिगुणी मायिकी मंडल का 'खेल' है ।**

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥
हउ विचि पाप पुन वीचारु ॥ (पृ ४६६)

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इकि ठाइ ॥
हउमै विचि सेवा न हो वई ता मनु बिरथा जाइ ॥ (पृ ५६०)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ॥
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ॥ (पृ १४२८)

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि त्रि-गुण मायिकी मंडल में, **अहम्मयी 'मैं-मेरी' की भावना** से हम जो भी कर्म या **सेवा करते हैं** — वे सब 'कार्मिक कानून' (karmic law) अधीन आते हैं तथा हमें **'कर्म-बद्ध' करके यम के वश करते हैं ।**

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ॥
प्रीति नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार ॥ (पृ २५२)

जब इह जानै मै किछु करता ।।
तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ।। (पृ २७८)

हमारे पाठ-पूजा, व्रत-नेम, तीर्थ-स्नान, सेवा, पुन्य-दान, नेक-कर्म, परोपकार, धार्मिक क्रिया, धार्मिक प्रचार, लाइब्रेरी **आदि कर्म-क्रिया की बहुलता एवं प्रफुल्लता के बावजूद हमारी धार्मिक तथा आत्मिक अवस्था गिरती जा रही है, क्योंकि ये सब कुछ अहम-मयी मन की मैं-मेरी की भावना से किये जाते हैं तथा हमें त्रि-गुण मायिकी मंडल में ही फँसाये रखते हैं।**

वास्तव में कोई क्रिया या कर्म अपने आप में **बुरा या अच्छा नहीं समझा जा सकता।** उस कर्म के पीछे **'भावना' द्वारा ही** उस कर्म के अच्छे या बुरे होने का **निर्णय हो सकता है।**

शारीरिक, मायिकी, राजसी, मानसिक, दिमागी शक्तियां यदि **पवित्र दैवीय भावना से प्रयोग की जायें,** तो उन्हें पुन्य, नेकी, उपकार या **सेवा कहा जाता है,** परन्तु यदि तुच्छ रुचियों या निजी स्वार्थ से प्रयोग की जायें, तब वही कर्म ही **'पाप'— अत्याचार** कहलाते हैं ।

पाप करहि पंचां के बसि रे ।। (पृ १३४८)

पापो पापु कमावदे पापे पचहि पचाइ ।। (पृ ३६)

उदाहरण के लिए, बच्चे का पालन— **माँ** भी करती है तथा **'नर्स'** भी परन्तु, इन दोनों की **'सेवा' में बेहद अन्तर है** । नर्स तो केवल अपनी **तनख्वाह** अथवा **उपजीविका** के लिए बच्चे की सेवा की **डयूटी** करती है। दूसरी और **माँ** अपनी **ममता के कारण** बच्चे के पालन पोषण तथा सेवा में अपने **आप** को **न्यौछावर करती है तथा इस परिश्रम का** —

दिखावा नहीं करती
कष्ट की शिकायत नहीं करती
बड़प्पन की लालसा नहीं रखती
अहसान नहीं जताती
कीमत नहीं मांगती
ऊबती नहीं
थकती नहीं ।

इसलिए मायिकी मंडल की अन्य समस्त सेवाओं में से **'माँ-प्यार'** की सेवा विलक्षण, अलौकिक, निष्काम, कठिन, सरव्त, लम्बी अथवा जीवनप्रयंत **उत्तम सेवा गिनी जाती है ।**

दूसरे शब्दों में मायिकी मंडल में यह **'माँ-प्यार ही, ईश्वरीय प्यार का प्रतिबिम्ब तथा प्रतीक है, जो माँ के हृदय द्वारा प्रकट तथा प्रवृत होता है।**

यह माँ-प्यार केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं, अपितु सृष्टि के **अन्य जीवों में भी प्रवृत्त है ।**

इसलिए गुरबाणी में **'ईश्वरीय प्यार' की तुलना के लिए 'माँ प्यार' के** सुन्दर उदाहरण दिये गये हैं —

जिउ राखै महतारी बारिक कउ तैसे ही प्रभ पाल ।। (पृ ६८०)

हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक ।।
हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक ।।
सहजे सहजि खिलाइदा नही करदा आलक ।। (पृ ११०१)

रेवलि खिलाइ लाड लाडावै सदा सदा अनदाई ।।
प्रतिपालै बारिक की निआई जैसे मात पिताई ।। (पृ १२१३)

उपरोक्त विचारों से पता लगता है कि **मायिकी मंडल में समस्त सेवाएँ—**

पढ़ी-पढ़ाई
सुनी-सुनाई
सीखी-सिखलाई
समझी-समझाई
देखा-देखी
रीस-करके
औपचारिकतावश
जबरदस्ती
स्वार्थ के लिए
कामना के लिए
धार्मिक सन्तुष्टि के लिए

ही की जाती है।

इन मायिकी मंडल की सेवाओं में **माँ की बच्चे के लिए सेवा श्रेष्ठ तथा निष्काम गिनी गयी है । इसका कारण यह है कि बच्चे की 'सेवा' की भावना 'माँ-प्यार' में से उत्पन्न होती है।**

शब्द 'उत्पन्न' ध्यान योग्य है।

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ ।। (पृ २९०)

अन्य सेवाएँ तो हम **बाहरी प्रेरणा** या अपनी रुचियों अनुसार करते हैं । परन्तु जब बच्चे का जन्म होता है, तब **'माँ' के हृदय के अन्दर 'माँ-प्यार' का स्त्रोत स्वतः अन्तर-आत्मा में से उत्पन्न होता है** तथा उसी **'प्यार-भावना'** से बच्चे की भलि प्रकार सेवा तथा पालन पोषण होता है।

यह 'माँ-प्यार' की **भावना** ही बच्चे के —

पालन-पोषण
लाड-लडाने
खेल-खिलाने
फलने-फूलने
शुभ-इच्छाएँ
हमदर्दी

आदि में बच्चे का सारी उम्र मार्गदर्शन करता तथा सहायक होता है, चाहे बच्चा **कितनी गलतियां करे या बड़ी उम्र का भी हो जाये ।**

मायिकी मंडल में, **अहम् मयी मन** से हम जो सेवा या नेकी करते हैं, उसके पीछे स्वार्थ, कामना तथा वाशना का अंश होता है या **'वाह वाह' की गुप्त इच्छा होती है।** इसलिए ऐसी सेवा की **कद्र-कीमत मायिकी मंडल में कार्मिक नियम** (karmic law) **अनुसार पड़ती है** — परन्तु आत्मिक मंडल अथवा ईश्वरीय दरबार में इनकी **पहँच या गिनती नहीं होती ।**

उदाहरण के रूप में दो जीव — एक **अमीर** तथा एक **गरीब** का जब दरगाह में लेखा हुआ तब अमीर व्यक्ति की रूह को बहुत आशा थी कि उसका दरगाह में बहुत आदर भाव तथा मान होगा — क्योंकि उस अमीर ने दुनिया में कई स्कूल, कॉलिज, लाइब्रेरियाँ, यतीम खाने, विधवा आश्रम, धार्मिक स्थान बनवाये तथा अन्य अनेक पाठ पूजा, कर्म काण्ड, दान-पुण्य करवाये थे परन्तु फिर भी धर्मराज के रिकार्ड में कोई आत्मिक सेवा का लेखा न निकला । उसको बताया गया जो भी पुन्य-दान

तथा नेक कर्म उसने दुनिया में किये हैं उन सब का **'फल' अथवा भुगतान उसको मायिकी मंडल में ही बढाई तथा वाह-वाह के रूप में मिल चुका है।** आत्मिक खाते में उसका कोई खाता नहीं है — **क्योंकि उसने स्वयं को न्यौछावर करके निष्काम सेवा कोई नहीं की।** उसके समस्त **अहम्मयी नेक कर्मों का भुगतान 'मायिकी मंडल' में ही हो चुका है** —

विचि हउमै सेवा थाइ न पाए ।।
जनमि मरै फिरि आवै जाए ।। (पृ १०७१)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ।।
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ।। (पृ १४२८)

परन्तु गरीब की रूह ने, अति गरीबी की दशा में होते हुए भी, **अपना 'आप' को न्यौछावर करके जो भी तिल-मात्र निष्काम सेवा की**- वही दरगाह में प्रवान हुई तथा दरगाह में उसका आदर-मान हुआ और वह अन्य बख्शिशों का पात्र बना।

भावनी भगति भाइ कउडी अग्र भाग रारवै
ताहि गुर सरब निधान दान देत है। (क.भ.गु१११)

उपरोक्त समस्त विचार त्रि-गुण मायिकी मंडल के भ्रम-भुलाव में प्रचलित सेवाओं तक सीमित है।

त्रि-गुणों से परे, **ईश्वरीय मंडल की सेवा 'विलक्षण' है,** जो मात्र आत्म पद का खेल है। आत्मिक मंडल की सेवा के पीछे कोई —

स्वार्थ
लोकाचार
रीस
जबरदस्ती
वाशना
कामना
डर-भय
अहम्
मैं-मेरी

नहीं होती।

यह ईश्वरीय सेवा —

द्वैत भाव से ऊपर उठ कर,
अहम के अभाव में,
बैखरीद सेवक बन कर,
अपने 'आप' को न्यौछावर करके,
हुकमी बंदा बन कर,

हुकुम का पालन करना है ।

मैं बंदा बै खरीदु सचु साहिबु मेरा ।।
जीउ पिंडु सभु तिस दा सभु किछु है तेरा ।। (पृ ३९६)

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ।। (पृ ४७४)

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभागा ।।
गुर की बचनी हाटि बिकाना जितु लाइआ तितु लागा ।। (पृ९९१)

सोई कमावै जो साहिब भावै सेवकु अंतरि बाहरि माहरू जीउ ।। (पृ १०१)

यह ईश्वरीय सेवा तो सतिगुरू के —

प्रीत
प्यार
चाव
उमाह
प्रेम-स्वैपना

के —

नशे में
भाणे में 'सुर' होकर
ईश्वरीय हथियार बन कर

ही हो सकती है ।

सेवकु सेवा तां करे सच सबदि पतीणा ।। (पृ ७६७)

नानक सेवकु सोई आखीऐ जि सचि रहै लिव लाइ ।। (पृ. १२५१)

आपे सेवा लाइदा पिआरा आपे भगति उमाहा ।। (पृ ६०६)

आपे सेवा लाइअनु आपे बखस करेइ ।। (पृ ६५३)

गुर की सेवा सेवको नानक वसमै बंदा ।। (पृ ४००)

ऐसी निष्काम तथा निःस्वार्थ सेवा ही असल मायने में 'आत्मिक सेवा' अथवा गुरू की सेवा कहला सकती है।

सेवा करत होइ निहकामी ।।
तिस कउ होत परापति सुआमी ।। (पृ २८७)

गुरबाणी में ऐसी उच्च-पवित्र, निर्मल, निःस्वार्थ, ईश्वरीय मंडल की 'आत्मिक सेवा' को यूँ दर्शाया गया है तथा उसकी महिमा बताई गई है —

सतगुर का भाणा मंनि लई विचहु आपु गवाइ ।।
एहा सेवा चाकरी नामु वसै मनि आइ ।। (पृ३४)
सा सेवा कीती सफल है जितु सतिगुर का मनु मंने ।। (पृ ३१४)
अहिनिसि नामि संतोखीआ सेवा सचु साई ।। (पृ ४२१)
मुकति भुगति जुगति तेरी सेवा जिसु तूं आपि कराइहि ।। (पृ ७४९)
सतिगुरु सेवनि आपणा गुर सबदी वीचारि ।।
सतिगुर का भाणा मंनि लैनि हरि नामु रखहि उर धारि ।। (पृ १४१५)

सेवा किस की करनी चाहिए ?

इसके उतर में गुरबाणी यूँ उपदेश देती है —

मेरे मन सेवहु सो प्रभ सब सुखदाता
जितु सेविऐ निज घरि वसीऐ ।। (पृ १७०)
टहल करहु तउ एक की जा ते ब्रिथा न कोइ ।।
मनि तनि मुखि हीऐ बसै जो चाहहु सो होइ ।। (पृ २५५)
नानक सेवा करहु हरि गुर सफल दरसन की
फिरि लेखा मगै न कोई ।। (पृ ३०६)
संत सेवा करि भावनी लाई तिआगि मानु हठीला ।। (पृ ४९८)
हम होवह लाले गोले गुरसिखा के
जिन्हा अनदिनु हरि प्रभु पुरखु धिआइआ ।। (पृ ४९३)
तिसु चरण पखाली जो तेरै मारगि चालै ।। (पृ १०२)
टहल करउ तेरे दास की पग झारउ बाल ।। (पृ ८१०)
जन की टहल संभारवनु जन सिउ ऊठनु बैठनु जन कै संगा ।। (पृ ८२८)

माणस सेवा खरी दुहेली ।।
साध की सेवा सदा सुहेली ।। (पृ. ११८२)

आउ सखी संत पासि सेवा लागीऐ ।।
पीसउ चरण परवारि आपु तिआगीऐ ।। (पृ. ४५७)

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ।।
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ।। (पृ. १३७३)

गुरमुखि सेवा गुरसिखा गुर सिख मा पिउ भाई मिता । (वा.भा.गु. ५/२)

गुर सिखी दा सिखणा गुरमुखि साध संगत दी सेवा।
(वा.भा.गु. २८/४)

ऐसी उच्च-पवित्र निष्काम आत्मिक सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की सेवा आत्मिक-मंडल में परवान नहीं है —

नाम संगि मनि प्रीति न लावै ।।
कोटि करम करतो नरकि जावै ।। (पृ. २४०)

प्रभु तजि अवर सेवकु जे होई है तितु मानु महतु जसु घाटै ।। (पृ.४९७)

राम भगति बिनु निहफल सेवा ।। (पृ. ११५८)

झूठु झूठु झूठु झूठु आन सभ सेव ।। (पृ. ११६६)

दूजी सेवा जीवनु बिरथा ।।
कछू न होई है पूरन अरथा ।। (पृ. ११८२)

सेवा के बिना मानव-जन्म व्यर्थ है तथा धिक्कारयोग्य है। इसके विषय में गुरबाणी में हमें सख्त ताड़ना की गयी है —

सतिगुरु जिनी न सेविओ से कितु आए संसारि ।।
जम दरि बधे मारीअहि कूक न सुणै पुकार ।।
बिरथा जनमु गवाइआ मरि जंमहि वारो वार ।। (पृ. ६९)

सतिगुरु न सेवे सो काहे आइआ ।।
धिगु जीवणु बिरथा जनमु गवाइआ ।। (पृ. १२९)

सतिगुरु जिना न सेविओ सबदि न लगो पिआरु ।।
सहजे नामु न धिआइआ कितु आइआ संसारि ।। (पृ. ५१२)

बिनु सतिगुर सेवे जीअ के बंधना जेते करम कमाहि ।।
बिनु सतिगुर सेवे ठवर न पावही मरि जंमहि आवहि जाहि ।।
बिनु सतिगुर सेवे फिका बोलणा नामु न वसै मनि आइ ।।
नानक बिनु सतिगुर सेवे जम पुरि बधे मारीअहि
मुहि कालै उठि जाहि ।। (पृ ५५२)

बिनु सतिगुर सेवे नामु न पाईऐ पड़ि थाके सांति न आई हे ।। (पृ १०४६)

धिगु धिगु मनमुखि जनमु गवाइआ ।।
पूरे गुर की सेव न कीनी हरि का नामु न भाइआ ।। (पृ. ११३०)

गुर सेवा बिनु भगति न होई ।।
अनेक जतन करै जे कोई ।। (पृ. १३४२)

कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहि ।।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि ।। (पृ. १३७४)

जिना सतिगुरु पुरखु न सेविओ सबदि न कीतो वीचारु ।।
ओइ माणस जूनि न आखीअनि पसू ढोर गावार ।। (पृ. १४१८)

विणु सेवा धिग हथ पैर होर निहफल करणी ।(वा.भा.गु. २७/१०)

गुरबाणी में उच्च-पवित्र आत्मिक **सेवा की बहुत बढ़ाई की गयी है** । 'सेवा' के अनेक गुणों में से कुछ संक्षिप्त गुणों को नीचे दर्शाया जाता है —

आत्मिक सेवा करने से **नाम की प्राप्ति होती है** —
जिनी सतिगुरु सेविआ तिनी पाइआ नामु निधानु ।। (पृ. २६)

गुर सेवा नाउ पाईऐ सचे रहै समाइ ।। (पृ ३३)

सतिगुरु सेवि सुखु पाइआ सचु नामु गुणतासु ।। (पृ ८३)

सतिगुरु सेवीऐ आपणा पाईऐ नामु अपारु ।। (पृ ३१३).

सतिगुर की सेवा सफल है जे को करे चितु लाइ ।।
नामु पदारथु पाईऐ अचिंतु वसै मनि आइ ।। (पृ ५५२)

सेवा द्वारा **'नाम' मन में बसता है** —

सतिगुरु सेवै सो जनु लेखै ।।
नानक नामु वसै घट अंतरि गुर किरपा ते पावणिआ ।। (पृ १२९)

सतिगुरि सेविऐ नामु मनि वसै विचहु भ्रमु भउ भागै ।। (पृ ५९०)

सतिगुर सेवि नामु वसै मनि चीति ।। (पृ ८३२)

गुर सेवे जेवडु होरु लाहा नाही ।।

नामु मंनि वसै नामो सालाही ।। (पृ १०६२)

'सेवा' करते हुए **'हरि' स्वयं मन में बस जाता है** —

सतिगुरु सेविऐ हरि मनि वसै लगै न मैलु पतंगु ।। (पृ ६९)

गुर सेवा तपां सिरि तपु सारु ।।

हरि जीउ मनि वसै सभ दूख विसारणहारु ।। (पृ४२३)

पूरे गुर की सेवा कीनी अचिंतु हरि मंनि वसाइआ । (पृ ६००)

उच्च-पवित्र आत्मिक सेवा करने से ही 'सच' अथवा **'नाम' में विलीन होते हैं** —

जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रुप समासी ।। (पृ ११)

वडी वडिआई गुर सेवा ते पाए ।।

नानक नामि रते हरि नामि समाए ।। (पृ १६०)

जिनि सेविआ तिनि सुखु पाइआ हरि नामि समाइआ ।। (पृ ८४९)

सेवा करने से **'हरि रस' की प्राप्ति भी होती है** —

जिनी सतिगुरु सेविआ तिनी पाइआ नामु निधानु ।।

अंतरि हरि रसु रवि रहिआ चूका मनि अभिमानु ।। (पृ २६)

गुर सेवा ते हरि मनि वसिआ हरि रसु सहजि पीआवणिआ ।। (पृ १२८)

जिनि सचु सेविआ तिनि रसु पाइआ ।।

नानक सहजे नामि समाइआ ।। (पृ ११७४)

सेवा द्वारा सहज ही **'ईश्वर के दर्शन' होते हैं** —

सेवा सुरति बिभूत चड़ावै ।।

दरसनु आपि सहज घरि आवै ।। (पृ ४११)

रामु जपहु मेरी सरवी सरवैनी ।।

सतिगुरु सेवि देखहु प्रभु नैनी ।। (पृ ४१६)

सेवक कउ तुम सेवा दीनी दरसनु देखि अघाई ।। (पृ ६१०)

हरि हरि सेवकु सेवा लागै सभु देखै ब्रहम पसारे ।। (पृ ९८२)

'सेवा' करने से **'अहम्' भी नष्ट हो जाता है** —

गुर की सेवा सबदु वीचारु ।।
हउमै मारे करणी सारु ।। (पृ २२३)

भनति नानकु सुणहु जन भाई ।।
सतिगुरु सेविहु हउमै मलु जाई ।। (पृ ८५२)

सतिगुरु अपणा सद ही सेवहि हउमै विचहु जाई हे ।। (पृ. १०४४)

सेवा द्वारा मन 'निर्मल' होता है —

गुर की सेवा चाकरी मनु निरमलु सुखु होइ ।। (पृ. ६१)

गुर सेवा ते मनु निरमलु होवै अगिआनु अंधेरा जाइ ।। (पृ. ५९३)

गुर सेवा ते जनु निरमलु होइ ।। (पृ. ६६४)

साध की सचु टहल कमानी ।।
तब होए मन सुध परानी ।। (पृ. ८९८)

सेवा करने से पाप भी नाश होते हैं —

कोटि पराध मिटे तेरी सेवा दरसनि दुखु उतारिओ ।। (पृ. ५२९)

जो हरि सेवहि संत भगत तिन के सभि पाप निवारी।। (पृ. ६६६)

वडै भागि भेटे गुरदेवा ।।
कोटि पराध मिटे हरि सेवा ।। (पृ ६८३-६८४)

सेवा करने से **तृष्णा का भी नाश होता है** —

जिनि सेविआ तिनि फलु पाइआ **तिसु जन की सभ भुख गवाईऐ** ।। (पृ ५९०)

मेरे मन हरि सेविहु सुखदाता सुआमी जिसु सेविऐ सभ भुख लहासा ।। (पृ ८६०)

सतिगुर सेवे की वडिआई त्रिसना भूख गवाई हे ।। (पृ १०४४)

गुर सेवा ते अंम्रित फलु पाइआ हउमै त्रिसन बुझाई ।। (पृ ११५५)

सेवा द्वारा 'दुखों' की निवृत्ति भी होती है —

जो तुधु सेवहि तिन भउ दुखु नाहि ।। (पृ ७२४)

गुर की सेवा दूखु न लागी ।। (पृ. ८६४)
सगले दूख मिटहि गुर सेवा नानक नामु सखाई ।। (पृ ११२७)
जिनि गुरु सेविआ तिसु दुखु न संतापै ।। (पृ ११४२)

सेवा करने से **सदैव सुख** की प्राप्ति होती है —

गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ ।। (पृ ११०)
जो सुखु प्रभ गोबिंद की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ।।
(पृ ३३६)
जिन्ही सतिगुरु पिआरा सेविआ तिन्हा सुखु सद होई ।। (पृ. ४५१)

सेवा करने से **मन इच्छित फल** भी प्राप्त होते हैं —

सतगुर की सेवा अति सुखाली जो इछे सो फलु पाए ।।(पृ. ३१)
सतिगुरु सेवे ता सभ किछु पाए ।।
जेही मनसा करि लागै तेहा फलु पाए ।। (पृ. ११६)
दूजी सेवा जनमु बिरथा जाइ जी ।।
हरि की सेवा ते मनहु चिंदिआ फलु पाईए
दूजी सेवा जनमु बिरथा जाइ जी ।। (पृ. ४९०)
सफल सेवा सुआमी मेरे की मन बांछत फल पावहु ।। (पृ १२१८)

सेवा करने से **मनुष्य जन्म सफल होता है** —

इकि सतिगुर की सेवा करहि चाकरी हरि नामे लगै पिआरु ।।
नानक जनमु सवारनि आपणा कुल का करनि उधारु।।
(पृ ५५२)
आइआ सो परवाणु है भाई तिन कै हउ लागउ पाइ ।।
जनमु सवारी आपणा भाई कुलु भी लई बरवसाइ ।। (पृ. ६३८)
सतिगुरु सेवे आपणा आइआ तिसु गणी ।। (पृ १२८३)

सेवा करने से **दरगाह में मान प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है** —

सतिगुरु सेवे तिसु मिलै वडिआई दरि सचै सोभा पाइदा ।।
(पृ १०६३)
सोहनि रवसम दुआरि जि सतिगुरु सेवही ।। (पृ १२८५)
प्रभ की दरगह सोभावंते ।।
सेवक सेवि सदा सोहंते ।। (पृ १३३९)

सेवा करने से **आवागमन** अथवा **जन्म-मरण का चक्र समाप्त होता है** —

सतिगुरि सेविऐ सदा सुखु जनम मरण दुखु जाइ ।।(पृ ५८७)

सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई आवणु जाणु रहाई ।। (पृ ६३५)

नानक सतिगुरु सेवहि आपणा से जन सचे परवाणु ।।
हरि कै नाइ समाइ रहे चूका आवणु जाणु ।। (पृ ६४८)

गुर सेवा ते सुखु ऊपजै फिरि दुखु न लगै आइ ।।
जंमणु मरणा मिटि गइआ कालै का किछु न बसाइ ।। (पृ ६५१)

भगतन की टहल कमावत गावत दुख काटे ता के जनम मरन ।।
(पृ १२०६)

सेवा द्वारा **यम के दायरे से भी छुटकारा होता है** —

करि किरपा टहल हरि लाइओ तउ जमि छोडी मोरी लागि ।। (पृ ७०१)

जिन्ही सतिगुरु सेविआ ताणु निताणे तिसु ।।
सासि गिरासि सदा मनि वसै जमु जोहि न सकै तिसु ।। (पृ ८५४)

गुरु सेवि मना हरि जन संगु कीजै ।।
जमु जंदारु जोहि नही साकै सरपनि डसि न सकै हरि का रसु पीजै ।।
(पृ ९०५)

सतिगुरु सेवहि से जन साचे काटे जम का फाहा हे ।। (पृ १०५३)

सेवा करने से **बंधन भी छूट** जाते हैं —

कहु कबीर छुटनु नही मन बउरा रे छूटनु हरि की सेव ।। (पृ ३३६)

गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए ।।
नानक सिरु दे छूटीऐ दरगह पति पाए ।। (पृ ४२१)

सेवा करने से **'दुरमति' भी नाश** होती है —

सतिगुरि सेविऐ दूजी दुरमति जाई ।।
अउगण काटि पापा मति खाई ।। (पृ ८३३)

सेवा करने से **स्वयं का बोध हो** आता है —

सतिगुरु सेवै सोझी होइ ।।
दूजै भाइ न लागै कोइ ।। (पृ ३६२)

गुर सेवा ते आपु पछाता ।। पृ४१५)

गुर सेवा ते त्रिभवण सोझी होइ ।।
आपु पछाणि हरि पावै सोइ ।। (पृ ४२३)

क्रमशः.....